# अभ्यास करने का सही तरीका (नये सत्संगियों के लिए)

1. **सुमिरन–** दीक्षा देते समय सत्गुरू जो नाम देता है उस नाम के दो टुकड़े करके सांस के साथ जपने के लिए बताता है, पहिले टुकड़े के अक्षरों को सांस ऊपर ले जाते समय में यह ख्याल बनाना चाहिए कि हमारा सांस पहले टुकड़े के अक्षर बोल रहा है और नीचे आने वाला सांस दूसरे टुकड़े के अक्षर को बोल रहा है। वह शब्द जीभ, होंठ या कंठ से नहीं बोला जाता, बल्कि मन से सुमिरन किया जाता है। इसे ही अजपा जाप कहते हैं। इसे तीसरे तिल पर (दानों भौंवों के बीच) ख्याल को जमा कर किया जाता है, इससे धारणा शक्ति बढ़ जाती है और साधक मूर्ति के ध्यान का अधिकारी बन जाता है। इसके करने से सुरत पिण्ड से निकल जाती है।
2. **ध्यान–** ध्यान सब प्रकार के साधन की कुंजी है क्योंकि इस साधन से गुरूमूर्ति त्रिकूटी के सीान पर जम कर बैठ जाती है। इसके करने से रिद्धि–सिद्धि भी आ जाती है परंतु इनमें फंसना नहीं है, अन्यथा आगे का रास्ता अवरूद्ध हो जाता है। ध्यान को बिना पकाये साधक के अंदर कभी– कभी शब्द व प्रकाश भी प्रकट हो जाता है परंतु वह ठहरता नही और आगे की मंजिल में रूकावट डालता है। इसलिए साधक को गुरू से अटूट प्रेम करना चाहिए तथा दृढ़ विश्वास करना चाहिए क्योंकि सुमिरन के बस में ध्यान है, ध्यान के बस में गुरू है और गुरू के आधीन नाम है और नाम का ज्ञान है। परंतु गुरू शब्द सनेही और वीतराग पुरूष होना चाहिए।
3. ध्यान के लिये शुरू–शुरू में त्राटक का भी सहारा लिया जा सकता है। इसमें गुरू के फोटो को अपनी आंखों के सामने इतनी ऊँचाई पर रखते हैं जो आंखों की ऊँचाई तक हो और फिर सुखासन पर बैठकर गुरू के रूप पर तक तक ताकते रहते हैं जबतक कि पलक अलसा न जांय। फिर आंखों को उतनी ही देर बंद रखते हैं जितनी देर खुला रखा था और गुरू के रूप को अंतर में ही देखने का प्रयास करते हैं। इस अभ्यास को दिन में 20–22 बार करने से गुरू का रूप धीरे–धीरे प्रकट होना शुरू हो जाता है। फिर तो यह हालत हो जाती है "दिल के आयने में है तस्वीरे यार, जब जरा गर्दन झुकाई देख ली।"
4. **भजन–** संतमत में भजन के मायने हैं अन्तर में जो अनहद धुन हो रही है उसे प्रकट करना और सुरत से उसे देखना। यह अन्तर का साधन उसी प्रकार सहायता करता है जैसे चार रोटी खाने से अंदर में ताकत मिलती है। यदि उन रोटियों को खाने के बजाय पेट से बांध लिया जाय तो न तो भूख मिटेगी न ताकत मिलेगी उल्टे खुजली और होगी तथा बदबू भी फेलेगी।
5. मन को क्रियाहीन करने के लिए यह जरूरी है कि सुरत को किसी और केन्द्र पर जमाया जाय और वह केन्द्र मन से ऊपर आत्मा के क्षेत्र में स्थित होता है और इसकी प्राप्ति ध्यान और भजन के साधन से ही होती है, अन्य प्रकार से नहीं। अब सवाल उठता है कि सुरत क्या है? उत्तर है सुरत है अनामी पुरूष का अंश जिसमें चेतनता आ गई है अर्थात् अनामी पुरूष का अंश+चेतनता। इस परम पुरूष के अंश में चेतनता आने के प्रभाव से उसमें खेल खेलने की शक्ति आ जाती है और वह इसी खेल में रत रहती है, जब यह सुरत खेल बंद करके निरत हो जाती है तो अपने निज स्वरूप में मिल जाती है।

## सुरत नहीं चढै कहा करिये?

1. सुरत अनामी पुरूष का अंश है परंतु इस पर भान–बोध यानि चेतनता का खोल चढ़ जाने से इसमें खेल खेलने की प्रवृत्ति पैदा हो गई है। जब तक इस प्रवृत्ति को रोका नहीं जाता, सुरत इसके बोझ के कारण अपने मूल स्रोत में नहीं मिल सकती अर्थात् ऊपर को नहीं उठ सकती।
2. सुरत की खासियत है कि यह एक समय में एक ही स्थान पर ठहरती है। अतः सुरत को ऊपर चढ़ाने के लिए जरूरी है कि इसे मन के ख्यालात या गुनावन में नहीं फंसने देना चाहिए अर्थात् एक समय में एक ही साधन करो– जब सुमिरन करो तो ध्यान और भजन की तरफ तवज्जह मत दो; जब ध्यान करो तो केवल ध्यान की तरफ ही सुरत रहे और जब भजन करो तो सिर्फ शब्द सुनने की ओर ही तवज्जह को जोर रहे।
3. सुरत के ऊपर से जब तन, मन और आत्मका के बोघमान हटने लगेंगे तब संरत आने आप ऊपर की ओर चढ़ने लगेगी। किसी ने कहा है– "निकल मन से, फिर मन से, निकल बेख्याली में आ। आत्मा के निकट अज खुद पहुंचता नू जायेगा।" तन से निकलने के लिए सुमिरन है और मन से निकलने के लिए गुरू मूर्ति का ध्यान है और आनंदरूपी आत्मा से निकलने के लिए और बेख्याली में आने के लिए भजन का साधन है।
4. सार शब्द में पंहुच कर चेतनता या भान बोध जो सुरत ने ग्रहण किया हुआ होता है वह सब शब्द में चला जाता है और हमारी सुरत निर्लेप होकर निरत हो जाती है या अनामी पुरूष में समा जाती है।

लेकिन यह अवस्था कभी–कभी थोड़ी देर के लिए ही आती है। इसका भेद सद्गुरू सीना बसीना ही देते हैं, यह लिखने का विषय नहीं है।

5. हमारे तन, मन, आत्मा व सुरत हमेशा एक हालत में रहना नहीं चाहते, तबदीली जाहते हैं। ऐसे में दो प्रकार के विचार उठते हैं–एक तो तन, मन व आत्मा के कल्याण के विचार होतते हैं और दूसरे इन्हें हानि पंहुचाने वाले होते हैं। परंतु जो लोग अपने समस्त कर्म मौज के आधीन छोड़ कर करते हैं तो उन कर्मों को करने के लिए जो विचार पैदा होते हैं वे यद्यपि सहायक नहीं होते, फिर भी वे विचार बाधक भी नहीं होते। हाँ यदि हम इन्हें बाधक बनाना चाहते हैं तो ये बाधक भी बन जाते हैं।
6. अब प्रश्न यह उठता है कि बाधक विचारों से छुटकारा कैसे पाया जाय? इनसे छुटकारा पाने का केवल एक ही उपाय है–गुरू के शरणागत होना। गुरू आपके विचारों को बदल देता है। लेकिन गुरू के भी चार रूप हैं–"चोला, नूर, तूर और अनुभव सार। चाहे जिसकी शरण लो, गुरू रूप हैं चार।" अर्थात् आपकी पंहुच जिस गुरू तक है या जिस गुरू तक को जानने का साधन आपने किया है, उसकी शरणागत हो जाओ, आपका काम बन जायगा।
7. जिन लोगों की शब्द ब्रह्म अथवा सार शब्द तक की पंहुच नहीं होती, उनको नूर अथवा पारब्रह्म की शरण में जाने से बाधक विचारों से छुटकारा मिल सकता है। जिनको अभी तक अन्तर में प्रकाश भी पैदा नहीं हुआ है, उनको सद्गुरू वक्त के चोले अथवा मूर्ति के ध्यान में तल्लीन होना चाहिए तभी इन बाधक विचारों से छुटकारा मिल सकता है।
8. शब्द गुरू ही हमारा सद्गुरू या सच्चा ज्ञान दाता होता है और उसकी दया मेहर से ही अशब्द गति की अवस्था प्राप्त होती है। "सद्गुरू हमारे अघर विराजे, जहां संतन का वास। पिण्ड अण्ड ब्रह्माण्ड से आगे, अलख अगम में निवास।" इसका पता संतसद्गुरू वक्त ही देता है।
9. हमारे चोटी के मुकाम पर सुषुम्ना नाड़ी है, इसके बांई ओर पिंघला नाड़ी है और दांईं ओर इंगला नाड़ी है। चूंकि दांईं से अच्छे ख्यालात आते है और बांईं ओर से बुरे ख्यालात आते हैं इसलिए संत दांईं ओर के हिस्से को दयाल मत और बांईं ओर के हिस्से को काल मत कहते हैं। बांईं ओर का शब्द हमारी सुरत को बहकाता है और ऊपर नहीं चढ़ने देता क्योंकि इसमें सुरत को ऊपर खींचने की ताकत नहीं होती। इसलिए बांईं ओर के शब्द की ओर कोई तवज्जह नहीं देनी चाहिए और दांई ओर के शब्द को ही सुनने का प्रयास करना चाहिए। कई सत्संगियों का यह भी अनुभव है कि यदि गुरूमूर्ति को दांई ओर बिठा लिया जाय तो शब्द स्वतः ही दांई ओर से आना शुरू हो जाता है। वैसे शब्द कहीं से भी आये आप शब्द को चोटी के मुकाम पर सुनने का प्रयास करो, दांये और बांये का चक्कर ही छोड़ो।
10. सुमिरन, ध्यान का साधन तो हर समय किया जा सकता है परंतु प्रकाश और शब्द का साधन तो सिर्फ उतनी देर करना चाहिए जितनी देर हमारी सुरत उसमें रूचि ले या उस साधन से अलसा न जाये, क्योंकि यदि सुरत साधन में रूचि नहीं ले रही तो उस साधन का कोई लाभ नहीं।
11. काल पुरूष हमसे कर्म करवा कर विश्व की रचना में हमें फंसाये रखता है। कर्म चाहे अच्छे हों या बुरे दोनों प्रकार के कर्म बंधन का कारण होते हैं। अच्छे कर्म सोने की जंजीर से बांधने वाले होते हैं और बुरे कर्म लोहे की जंजीर से। इसलिए संत महात्मा हमेशा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के प्रति सजग रहते हैं, चौकन्ने रहते हैं और सुमिरन–ध्यान के हथियार से इनका शमन करते रहते हैं, इन विकारों का दमन नहीं शमन करना जरूरी है।
12. शारीरिक सेवा करने से आपको सालोक्य का लाभ मिलता है और इसमें सुमिरन की भूमिका विशेष होती है। सुमिरन करने से साधक शारीरिक स्तर से ऊपर उठ जाता है। अजपा–जाप इसी श्रेणी में आता है। ध्यान से मन वश में आता है और मानसिक क्लेशों से छुटकारा मिलता रहता है। इससे सामीप्य की अवस्था का लाभ मिलता है। इसके बाद प्रकाश का साधन आता है जिसका संबंध आत्मा से है और इसके करने से आत्मानन्द की प्राप्ति होती है जिसे सारूप्य की अवस्था भी कहते हैं। इसके बाद जब सुरत शब्द को सुनती हुई और प्रकाश को देखती हुई अशब्द गति में चली जाती है तो उसे संत सायुज्य की अवस्था कहते हैं। लेकिन साधन केवल साधन हैं मंजिले मकसूद नहीं। मंजिल पर पंहुचने के लिए रहनी भी बनानी पड़ती है। जिस अवस्था का अनुभव साधक करना चाहता है, उसे उस अवस्था में रहना भी चाहिए तभी कुछ लाभ होगा अन्यथा अहंकार और बढ़ जायगा। इसके लिए निरंतर गुरू कृपा मिलती रहना मुख्य है। कोई भी अपने बलबूते पर मंजिले मकसूद पर नहीं पंहुच सकता, वहां नहीं ठहर सकता।
13. इस संसार में भौतिक और आध्यात्मिक सफलता प्राप्त करने के लिए "एक आस, एक विश्वास" अर्थात् अटूट प्रेम, अटूट श्रद्धा और अटूट विश्वास का होना जरूरी है। बिना अटूट श्रद्धा और विश्वास के किसी को कुछ नहीं मिलता और यदि कुछ मिलता भी है तो वह उतना नहीं मिलता जितना की

मिलना चाहिए। आध्यात्मिकता में समफला के लिए पूर्ण शरणागती रामबाण का काम करती है। कहा भी है–"शरणागत जब हुआ किसी का तुझको बन्दे चिन्ता क्या। गर हिरदे में चिन्ता व्यापे धोखा है शरणागत ना।"

14. आपकी प्रकृति को देखकर सद्गुरू जो भी आपको हिदायत दे बस उसको पूरा बजा लाने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा दो। यही असली नामदान है। अगर इस पर चलोगे तो तुम्हारी हरदम रक्षा होती रहेगी। मौज हमेशा आपका योगक्षेमम् वहन करती रहेगी।

## साधन करने का तरीका

1. "आंख, कान, मुंह बंद कर, नाम निरंजन ले। अन्दर के पट तब खुलें, जब बाहर के पट दे।।" साधन अभ्यास करने के लिए प्रातः 3बजे से 6बजे तक का समय उपयुक्त होता है। साधन में इस प्रकार बैठें कि रीढ़ की हड्डी सीधी रहे और हाथ–पैर हिले–डुलें नहीं और न ही उनमें तनाव आने पाये वरना ध्यान बार–बार उधर ही जाता रहेगा। आंख, कान और मुंह स्वाभाविक रूप से बंद करना है, इसमें कोई जबरदस्ती नहीं करनी। पहिले सुमिरन से शुरू करें, फिर थोड़ा समय ध्यान के लिए दें और जब गुरू मूर्ति जम जाती है तो सत्गुरू से पूछकर शब्द सुनने का अभ्यास प्रारंभ करें।
2. पहिले कानों में ऐसा लगता है जैसे पास से चिड़ियों की चहचाहट की ध्वनि आ रही है, फिर झींगुर की आवाज, फिर बादलों की गड़गड़ाहट, कभी मंदिर के घन्टे की आवाज, कभी मृदंग की थाप की आवाज, कभी शंख तो कभी रारंग–सारंग का शब्द सुनाई पड़ता है। इसमें कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है, हाँ अपने सत्गुरू से पूछकर आगे का मार्ग तय करते हुये लगातार चलते रहना है।
3. किसी–किसी को पहिले प्रकाश तो अन्य को पहिले शब्द सुनाई देता है और किसी को कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता, इसमें घबराने की कोई बात नहीं है। आप जो भी साधन करते हैं वह आपके लेखे में लिखा जाता है और जब उसमें परिपक्वता आ जाती है तो अगला मार्ग स्वयं ही खुलता जाता है।
4. अगर आपको जीवन में बेफिक्री हासिल हो गई है तो आपको कुछ भी करने की जरूरत नहीं है यह हालत आपको मंजिले मकसूद पर पंहुचा देगी। मगर यह बेफिक्री बनावटी या किसी भौतिक नशे के प्रभाव से नहीं आई हुई होनी चाहिए। यह वह बेफिक्री है जिसे भागवत गीता में श्रीकृष्ण भगवान ने इन शब्दों में व्यक्त किया है–"सुख दुःखे समे कृत्वा, लाभालाभौ जयाजयौ।" अर्थात् जो सुख–दुख, लाभ–हानि, जय–पराजय का विचार किये बिना अपने समस्त व्यवहार निर्लिप्त होकर करता रहता है, उसे कोई पाप नहीं लगता। जिसकी ऐसी हालत हो जाती है उसे कुछ करने की जरूरत नहीं रहती क्योंकि इससे ज्यादा कुछ करना बनता ही नहीं है। यह पूर्ण शरणागति की अवस्था है।
5. गुरू या भगवान अपने भक्त से कहता है कि आप जीवन में जो भी चाहते हो वही करते हो, लेकिन होता वह है जो मैं चाहता हूं। अब आज से आप वह करो जो मैं चाहता हूं और फिर होगा वह जो आप चाहते हो।
6. मुक्ति भी हमारी मंजिल नहीं है क्योंकि यदि मुक्ति हमारे किसी कर्म से मिलती है तो उस कर्म का फल भोगने के पश्चात् वह मुक्ति समाप्त हो जायगी। यदि मुक्ति स्वाभाविक रूप से बिना प्रयास जैसा ऊपर कहा गया है "बेफिक्री" की हालत आ गई है जो भक्ति या प्रेम या सेवा का ही रूप है तो उसको मंजिले मकसूद कह सकते हैं क्योंकि ऐसे व्यक्ति को शरीर छोड़ते समय कोई चिन्ता, इच्छा या आसक्ति ही नहीं रहेगी और जब कोई आसक्ति नहीं रहेगी तो उसका पुनर्जन्म भी नहीं होगा।

श्रद्धेय श्री गोपी लाल कृषक उर्फ दयाला नन्द जी महाराज की
संतलेख माला प्रथम भाग से साभार उद्धृत।

उद्धृतकर्त्ता विरेन्द्र, बल्लभगढ़ फरीदाबाद
कैप्टन वायरिंग हारनेस, एफ–704
आदर्श नगर, मलेरना रोड़, बल्लभगढ़ 121004
फरीदाबाद (हरियाणा) फोन न0 09971754503